॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥



॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः॥

हिन्दू संघटन

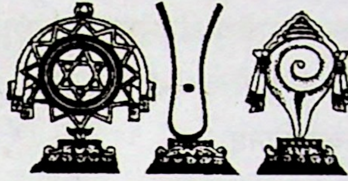
ग्रन्थ प्रणेता

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

श्री ''श्रीजी'' महाराज

* श्रीसर्वेश्वरो जयति *



।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

शास्त्र मर्यादित

धर्मनियन्त्रित

हिन्दू - संघटन

रचयिता-

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

श्री 'श्रीजी' महाराज

का

सामयिक उद्बोधन

पुस्तक प्राप्ति स्थान--

अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

प्रकाशक--

अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किशनगढ, जि० अजमेर (राज०)

प्रथमावृत्ति : वि. सं. २०३६ द्वितीयावृत्ति वि. सं. २०५२

तृतीयावृत्ति--२०००

वि० सं० २०६६ श्रीनिम्बार्काब्द ५१०८

मुद्रक--

श्रीनिम्बार्क - मुद्रणालय

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

न्यौछावर

पाँच रुपये

हिन्दू संघटन का उद्देश्य

हिन्दू संस्कृति विश्व में सबसे प्राचीन संस्कृति है। इसका मूल आधार वेद, उपनिषद्, स्मृति, तन्त्र, सूत्र, पुराण, इतिहास आदि आर्ष ग्रन्थ हैं जो संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं। हिन्दू धर्म एवं संस्कृति ने विश्व के अनेक धर्म तथा संस्कृति से अपना मधुर सम्बन्ध बनाये रखा है। किन्तु कालान्तर में पाश्चात्य देशों के आक्रामकों ने भारतवासियों पर आघात किया, हमारे धर्म ग्रन्थों, धार्मिक सम्बन्धों को उच्छिन्न किया, फूट डाली और उन्हें पराधीन कर दिया। भारत देश जो किसी समय समृद्ध देश था उसे लूट कर निर्धन बना दिया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बहुत वर्ष बाद भी भारत अपनी गौरवमयी प्राचीन समृद्धि को प्राप्त नहीं कर सका है। यहाँ की अधिकांश जनता अभी भी निर्धन व अशिक्षित है। उनको हर कोई प्रलोभन तथा भय दिखा कर धर्मान्तरित कर देता, हिन्दु समाज से विघटित कर देता है। वर्तमान में सरकार तथा देश के शिक्षित वर्ग एवं नेतागण इसमें मूल कारण स्पृश्यास्पृश्य को मानते हैं। दूसरे कारणों को उतना महत्व नहीं देते। सरकारी तन्त्र, लेखों, प्रवचनों आदि से बहुत प्रचारित करने पर भी हिन्दु-विघटन का दौर बन्द नहीं हो रहा है। अतः प्रातः स्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज ने हिन्दु-विघटन के अनेक कारण सप्रमाण दर्शाते हुए हिन्दुओं के संघटन और उनकी एकता को सुदृढ बनाने के उद्देश्य से शुभाशीर्वादात्मक निबन्ध ''हिन्दू-संघटन'' नाम से प्रकाशित करवाया है। इसमें यथा स्थान शास्त्रीय उद्धरणों सहित आचार्यश्री ने जो उदात्त विचार अभिव्यक्त किये हैं उन्हें पढकर प्रत्येक श्रद्धालुजन हिन्दु संस्कृति की प्राचीन परम्परा के साथ अभिनव विधा को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

श्रीचरणानुग्रहैककाम-

पं० वासुदेवशरण उपाध्याय व्या. सा. वेदान्ताचार्य

संघटन में अपार शक्ति है

जहाँ संघटन है, ऐक्य भाव है, आत्मीयता है वहाँ कभी भी अशान्ति, दुःखद्वन्द्व आदि के अवांछित उपद्रव नहीं होते। वहाँ सर्वदा सुख-शान्ति, समृद्धि का अखण्ड साम्राज्य रहता है। अतः किसी भी राष्ट्र में किसी भी समाज, सम्प्रदाय, वर्ग-विशेष में यदि पूर्णतः संघटन है तो वहाँ किसी प्रकार का वैशम्य, वैपरीत्य नहीं किन्तु जहाँ इसका अभाव है वहाँ निरन्तर विविध कलह-क्लेश विघ्न-वाहुल्य का होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से सर्वत्र संघटन को ही विशेष महत्व दिया है। न केवल मानव मात्र ही अपितु पशु-पक्षियों मधुमक्षिका चेंटी आदि सूक्ष्म जन्तुओं में भी पर्याप्त संघटन देखा जाता है। अतः विवेकशील मानव में तो संघटन का होना अत्यन्त आवश्यक है।

संघटन के यथार्थ स्वरूप के परिज्ञान का अनुभव भी परम अपेक्षित है। संघटन में स्वार्थपरता, केवल प्रदर्शन आदि का ही कृत्रिम-क्रम हो तो वह संघटन सुव्यवस्थित नहीं हो सकता। इसमें हृदय की पवित्रता, व्यवहार की पवित्रता, चरित्र की पवित्रता, संस्कारों की पवित्रता तथा कार्य प्रणाली की पवित्रता का होना नितान्त अनिवार्य है। तभी वह संघटन सार्थक चिरस्थायी एवं पूर्ण रूपेण व्यवस्थित होता है।

अधिकांश व्यावहारिक जगत् में तथ्यरूपेण अनुभूति पूर्ण यह देखा गया है कि कहा तो जाता है संघटन परन्तु क्रिया तद्विपरीत

विघटन ही विघटन के रूप में दृग्गोचर होती है। अतः समग्र दृष्ट्या संघटन मर्यादित व्यवस्थित एवं शास्त्रानुमोदित तथा उत्तमश्लोक धर्मज्ञ महापुरुषों के निर्देशन में सम्पादित हो।

प्रस्तुत 'हिन्दु-संघटन' आलेख का प्रकाशन इसी आशय से किया गया है कि हमारा जन जीवन अस्त-व्यस्त न हो और अपने यथार्थ स्वरूप को भलि प्रकार समझें और तदनुकूल अपने संघटन को सुरक्षित रखें। ऐसे अनेक घातक तत्त्व हैं जो आपके विराट्-संघटन को विचलित करने हेतु षड्यन्त्र करने में कटिबद्ध है। अतः हम अपने मूलभूत सिद्धान्त से अपने सन्मार्ग से अपनी निर्मल पावन परम्परा, मर्यादा से वैदिक सनातन पद्धति से विश्रङ्ख-लित न हो जाँय। प्रस्तुत संक्षिप्त आलेख में इन्हीं उपयुक्त सामयिक प्रसङ्गों पर एक चिन्तनात्मक अपना भावपूर्ण विचार आपके समक्ष निर्दिष्ट है। यदि इस आलेख के अवलोकन से परिशीलन से हमारे हिन्दु समाज का किञ्चित् भी हित होता है तो हम इस लघु-आलेख की सार्थकता समझेंगे। अस्तु सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा भगवान् श्रीसर्वेश्वर हमें ऐसी पवित्र सद्बुद्धि सद्बल प्रदान करें जिससे सम्पूर्ण हमारा भारतवर्ष एवं समस्त विश्व का परम मङ्गल हो।

सर्वेश्वरः शुभं कुर्यात्समृद्धिं परमं सुखम्।
आरोग्यञ्च पराभक्तिं स्वकीयशरणागतिम्।।

वैशाख शुक्ल ३ अक्षयतृतीया मंगलवार
वि० सं० २०६६

--श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

श्री ''श्रीजी'' महाराज का

सामयिक उद्बोधन

स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य च जीवति।
गुणधर्मवीहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम्॥

जिसके गुण और धर्म जीवित है, वास्तव में वही जी रहा है, गुण और धर्म रहित व्यक्ति का जीवन वृथा है।

अनादिवैदिक सनातन धर्म न केवल भारत का ही अपितु विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं, जिसमें सत्य, अहिंसा, अकाम, अक्रोध एवं सहिष्णुता सदाचार प्रभृति के उत्कृष्टतम उपदेश विपुलरूप से विद्यमान है जिस उपदेश-सरणि को मानव अपने जीवन में सम्यक् प्रकार से क्रियान्वित कर इहलौकिक एवं पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के साथ अन्ततः अमृतत्व को प्राप्त करता है। किन्तु अत्यन्त संताप और आश्चर्य का विषय है कि इसी सर्वोच्च सनातन धर्म के समाश्रित तथा सर्वतः संपुष्ट आज का पथ-विभ्रान्त पाश्चात्य-अन्धानुकरणशील भारतीय मानव अपने ही धर्म की कटु आलोचना ही नहीं परञ्च उसके समूलोच्छेद के उपायों तक का अवलम्ब कर रहा है और हिंसा, चोरी, दम्भ, ईर्ष्या, द्वेष, काम-क्रोधादि तथा दुराचार-पापाचार को करने में ही स्वयं को प्रतिष्ठित मानता है।

ऐसी दुरुह अवस्था में सनातन धर्म के कर्णधार धर्माचार्यों, सन्त-महात्माओं एवं धर्मानुरागी सद्गृहस्थ जन समुदाय को परस्पर में गम्भीर विचार पूर्वक हिन्दू संघटन हेतु प्रबलतम प्रयत्न करना चाहिये। स्मरण रहे अभी का किञ्चित् भी किया गया प्रमाद भविष्य के लिए महाविघ्न रूप एवं अत्यधिक घातक सिद्ध होगा।

आज विशाल सनातन धर्म के अन्तर्गत हिन्दुत्व का उद्बोधन कराने वाले समस्त सम्प्रदाय, नाना वर्ग, विभिन्न मतावलम्बियों को एक सूत्र में आबद्ध होकर धर्मविरोधी तत्त्वों के आमूलचूल निवारणार्थ इस कार्य सम्पादन के लिए सर्वतोभावेन तत्पर हो जाना परमोत्तम एवं परम अभीष्ट है।

यह स्वाभाविक ही है जब किसी के जीवन में स्वकीय मान-सम्मान, स्वार्थ-लिप्सा, अर्थलोलुपता, आदि प्रविष्ट हो जाते हैं तब वह अपना समग्र स्वस्थ विवेक खोकर विपथगामी बन जाता है। ऐसी स्थिति में उसे न तो कर्तव्याकर्तव्य का आभास, न शास्त्रज्ञान की परमोच्च अवस्था के चिन्तन और न महापुरुषों के उत्तम सदुपदेशों का, उत्तम गुणों का स्मरण ही हो पाता है, फिर तो वह विश्रङ्खलित होता हुआ कुछ का कुछ मद्योन्मत्त की भाँति प्रलाप कर बैठता है। ऐसी ही स्थिति आज हिन्दू-समाज के कितने ही दिग्भ्रान्त जनों की है।

स्वार्थान्ध को शास्त्र की अपेक्षा ही अकिञ्चित्कर है, वहाँ वेद-स्मृति पुराणादि शास्त्रों के दिव्यतम वचन कैसे सुखप्रद हो सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिये समस्त धर्म-कर्म, देव-गो-विप्र-गुरु, आचार्य-पूजा, सदाचार, सत्यपालन, अस्तेय सात्विक जीवन,

वैदिक परम्परा पालन, वैदिक संस्कृति-अनुसेवन, सुमर्यादित आचरण, मधुर व्यवहार, संयम-सुशीलता प्रभृति सर्वोच्चतम सद्गुणों के आभास की तो परिकल्पना ही नहीं की जा सकती। उच्छृङ्खलता पूर्वक जो मन में आया वही कह दिया अथवा लिख दिया यही उनका आदर्श मानो किंवा इत्थंभूत मूल कर्तव्य समझो। इन शास्त्र विरुद्ध आचरण करने वाले अज्ञजनों द्वारा वेदादि शास्त्र विपरीत, धर्म विपरीत, तथ्य विपरीत, सत्य विपरीत, मर्यादा विपरीत वक्तव्य देने का दुस्साहस न केवल असंगत ही अपितु अत्यन्त घृणित कर्म है। ऐसे व्यक्ति स्वयं तो अपना अहित करते ही हैं, साथ ही सरस सरल सात्विक जनों के मानस को भी कलुषित कर बैठते हैं। वस्तुतः ऐसे विस्मृत स्वरूपज्ञान सर्वथा भ्रान्त तत्त्वों के कथनोपकथन पर, घोर गरल भरित भाषणों पर, घृणास्पद अज्ञानजनित लेखों पर हिन्दू-समाज को सतर्क रहकर अपनी सर्वश्रेष्ठ शास्त्रविहित आदर्शपूर्ण परम्परा को एवं सर्वमङ्गलप्रद परम पावन सात्विक आस्था को सुस्थिर रखना केवल मात्र अभीष्ट ही नहीं प्रत्युत नितान्त रूप से अत्यावश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं श्रीप्रभु ने यह कितना दिव्यतम उपदेश प्रदान किया है--

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं प परां गतिम् ।।

ज़ो शास्त्रों की श्रेष्ठ विधि को त्यागकर स्वेच्छाचारिता का अवलम्ब लेता है वह न तो किसी परम सिद्धि को प्राप्त कर सकता है और न उत्तम सुख एवं परमोच्चतम गति ही प्राप्त कर सकता है।

किं बहुना अब भी यदि यह दिग्भ्रान्त कतिपय हिन्दू-समाज का जन-जीवन वैदिक सत्पथ की ओर दृष्टिपात करे, अपने हिन्दुत्व की अक्षुण्ण मर्यादा का, अक्षुण्ण सदाचार का परिसेवन करे तो स्वतः ही दिव्य शक्ति सामर्थ्य, सुख-शान्ति, समग्र-संघटन, चिरभिलषित उत्कृट आदर्श, परमगौरव-गरिमा आदि सभी कुछ प्राप्त कर सकते हैं। प्रातर्वन्दनीय श्रीमहाराणाप्रताप छत्रपति श्रीशिवा जी, श्रीगुरुगोविन्दसिंह प्रभृति जैसे अतुल शक्ति सम्पन्न स्वकीय राष्ट्रोन्नायक इन विशिष्टात्माओं ने स्वकीय संस्कृति, सनातन धर्म निष्ठा के सद्बल पर एवं अपने सद्गुरुओं के आशीर्वाद के प्रभाव पर ही हिन्दुत्व की, अपने विशाल राष्ट्र की सुरक्षा करने की अपूर्व शक्ति प्राप्त की थी। इतना ही नहीं सृष्टि के आरम्भ से लेकर अद्यावधि जितने भी धर्मनिष्ठ महापुरुष हुये सभी अपने स्वेष्ट आराधन तथा अपने परम वन्दनीय धर्माचार्यों, धर्म-मर्मज्ञ धर्मगुरुजनों का दृढ आश्रय पाकर ही धर्म-संस्कृति, राष्ट्र आदि का अभ्युदय कर सके।

तथाकथित आक्रोश भरे उन धर्म विचलित जनों को आचार्यप्रवर अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठाधीश्वरश्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के इन मननीय वचनों का मनन कर अपने कुण्ठित मानस को सद्धर्म से अभिषिक्त कर प्रशस्त करना चाहिये।

गुरु द्रोही जो आतमा सो मम द्रोही जान।
'परसा' जो गुरु भक्त हैं सो मम भक्त पिछान।।

'परसा' निन्दा साधु की करे जो रासभ होय।
भार वहै घूरे चरे आदर करे न कोय ।।

इससे स्पष्ट ही है, एवंविध आचरण करने वाले स्वयं को ही विवेकी मानने वाले पण्डितमन्य गहन गर्त में निपतित हो जाते हैं। उपनिषद् के इस वचन से तो और भी सुस्पष्ट है--

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ।।

अर्थात् जो अविद्याग्रस्त मानव हैं, जो अपने आपको ही विद्वान् पण्डित मानने वाले कुटिल गतिपरायण मूढ लोग उसी प्रकार गम्भीर गर्त में पड़ते हैं जिस प्रकार स्वकीय कन्धे पर किसी इतर नेत्रविहीन जन को बिठाकर कोई प्रज्ञाचक्षु व्यक्ति जब किसी गहरे गड्ढे में गिर जाता है और महती पीड़ा का अनुभव करता है साथ ही अपने कन्धस्थित नेत्रविहीन व्यक्ति को भी उसी अकल्पनीय कष्ट में प्रवृत्त कर देता है।

ठीक यही स्थिति इन कर्तव्याकर्तव्यहीन स्वयंभू लोगों की है जो अपनी कुण्ठित बुद्धि का सुपरिचय देते हुए उन्मत्तवत् प्रलाप कर बैठते हैं। इतना ही नहीं धर्म के आश्रय को लेकर स्वयं भी इतस्ततः सञ्चक्रमण करते दिखाई देते हैं। उन्हें अब भी सही स्वस्थता का आश्रय लेकर वेदादि शास्त्र सम्मत सत्य पक्ष का अवलम्ब लेना चाहिये, जिससे जीवन में शान्ति सुख का सरस और स्वस्थ सञ्चार हो।

हिन्दू संघटन के नाम पर आज जो कतिपय महानुभाव वर्ण व्यवस्था को जाति व्यवस्था स्पृश्यास्पृश्य के विवेकपूर्ण विचार

को बाधक बताकर श्रुति-स्मृति-पुराणादि शास्त्रों का, हिन्दू वर्ग का, हिन्दूराष्ट्र भारतवर्ष की अक्षुण्ण परम्परा का समूलोच्छेद करने में अग्रसर हो रहे हैं वे वस्तुतः सर्वथा भ्रान्त हैं। उन्हें यह पता नहीं कि प्रथम तो हमारी यह शास्त्र मर्यादा शास्त्रव्यवस्था शास्त्रविधि भगवदीय संविधान और फिर हमारी परम प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिष्ठापित धर्म नियन्त्रित उत्तम व्यवस्था, उसे अज्ञानजनित मोह में स्वार्थ में पड़कर उसके हनन का प्रयत्न करना न केवल स्वयं के लिये ही अहितकर अपितु सम्पूर्ण भारत के लिए अहितकर होगा। सनातन धर्म के स्वरूप को उसके सारभूत तथ्य को बिना समझे ही अविवेक झञ्झावात के आवर्त में आ जाना प्रज्ञाबोधक कार्य नहीं है। किसी भी वस्तु को समझने के लिये सर्वप्रथम उसके मूलभूत आधार को देखा जाय, उसमें सम्यक् ऊहापोह किया जाय, यथार्थता, सत्यता देखी जाय, फिर उसके गम्भीर मर्मज्ञ विचारशील धीर प्रज्ञावान् पुरुषों, धर्मनिष्ठ धर्मगुरुजनों, धर्माचार्यों, धर्म-तत्त्वज्ञों से निष्ठापूर्वक विचार किया जाय, वे जिस समुचित सत्य का निर्धारण कर अपना यथार्थ निर्णय दें, तब कहीं उसके व्यवहार की बात गम्भीरता से सोची जाय। श्रीमनु महाराज का यह वचन कितना सुन्दर मननीय है--

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥

वेदज्ञ विप्र श्रेष्ठ जो निर्णय दे उसको ही परम धर्म मानो परन्तु दशहजार मूर्ख जो अपना निश्चय दें वह धर्म नहीं हो सकता।

अतः जिसके मन में आया वही बिना सोचे-समझे कर

लेना मानवता का कर्तव्य नहीं है। हमारी सनातन पद्धति किसी के प्रति घृणा नहीं करती, वह तो देव-दानव, मानव-यक्ष-राक्षस-भूत प्रेत-डाकिनी-शाकिनी-पशु-पक्षी-कीट-पतङ्ग-जड-चेतन सबकी मङ्गल कामना करती है, फिर हमारे ही अभिन्न अङ्ग अस्पृश्य वर्ग के प्रति कैसे घृणा की जा सकती है। स्पृश्यास्पृश्य विचार तो वैज्ञानिक पद्धति से भी अत्यावश्यक एवं ग्राह्य है। हमारे शरीर में ही ऐसे अङ्ग हैं या ऐसे पदार्थ हैं जिनके स्पर्श से शुद्धि की अपेक्षा रहती है। रजःस्वला गृहस्वामिनी किंवा अशौच सूतक प्रभृति अवस्थाओं में निज परिकर या स्वयं अस्पृश्य रहता है। क्या इसका अर्थ घृणा है ? मन्दिर का पुजारी जब तक स्वयं अपनी शास्त्र नियमानुसार शुद्धि नहीं कर लेता, चाहे वह वेदज्ञ विप्र ही क्यों न हो मन्दिर में नहीं जा सकता। पशुओं में देखें श्वान-गर्द-भादिक अस्पृश्य होते हैं, किन्तु इनका भी यथावसर वन्दन होता है। श्वान के लिये तो गो-ग्रास की भाँति ग्रास-दान का विधान है। इस भाँति पक्षियों में काक (कौआ) कंक गृद्ध आदि अस्पृश्य होते हैं, कौआ को तो अन्नवलि (ग्रास) अर्पित किया जाता है। श्राद्ध कर्म में जब तक कौआ को ग्रास नहीं दे पाते सद्गृहस्थ भोजन नहीं करते।

भारतीय वैदिक सनातन धर्म में तो प्रत्येक क्षेत्र में इतना सुन्दरतम गहनातिगहन सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से सभी प्रसंगों पर साङ्गोपाङ्ग मन्थन कर जिस अपूर्व शुद्ध नवनीत को मानवता के प्रति दान किया है उसका जितना भी गुणगान किया जाय सर्वाशतः अत्यल्प है। कितने ही आधुनिकतम महानुभाव हटात् कह बैठते

हैं कि सभी वस्तु स्पृश्य है, बड़ी अच्छी बात है उनकी। बिना विधि ज्ञान के विद्युत् तार का स्पर्श करें, वृश्चिकोषधि का स्पर्श करें, वृश्चिक का ही स्पर्श करें, सर्प का स्पर्श करें, भल्लातक (भिलावा) या अग्नि का स्पर्श करें, क्लोरोफार्म का नासिका से स्पर्श करें, तेजाब का स्पर्श करें देखें कैसा परिणाम समक्ष में आता हैं। स्पृश्यास्पृश्य का ज्ञान तो सामान्यतया पशु-पक्षी में भी विद्यमान है। श्वान (कुत्ता) स्पर्श ज्ञान से चोर एवं हत्यारे का पता लगा लेता है। मनुष्य द्वारा स्पर्श करने पर चिड़िया भी अपने अण्डे को त्याग देती है। रजःस्वला नारी यदि आचार के पात्र का ही स्पर्श करदें तो वह आचार ही विकृत हो जाता है। कीटाणु विशेषज्ञ आधुनिक चिकित्सक वर्ग भी स्पृश्यास्पृश्य को ध्यान रखते हुए चिकित्सा करते हैं। इस प्रकार अगणित उदाहरण हैं। विस्तार भय से यहाँ केवल संकेतमात्र ही किया गया है। किन्तु आश्चर्य है कि आज का बुद्धिजीवी मनुष्य स्वस्वरूप ज्ञान न करके असुरता का वरण कर रहा है।

इस उपर्युक्त विश्लेषण का यह भाव नहीं कि स्पर्श न करो, आवश्यकतानुसार इनका स्पर्श भी अपेक्षित होता है परन्तु उसकी एक विशिष्ट पद्धति एक विशिष्ट विधि है, उसकी एक निर्धारित प्रक्रिया है, जब तक उसके स्पर्श करने का गुरु ज्ञान द्वारा सम्यक् बोध न हो तो अकल्पनीय अनिष्ट का आना अस्वाभाविक नहीं। अतः स्पृश्यास्पृश्य में महान् ज्ञान-विज्ञान निहित है। हमारे यहाँ तो अतिक्रूर, अतिक्रोधी, जघन्यकर्मपरायण, पापरत, नाना हिंसाप्रवृत्त को केवल अस्पृश्य ही नहीं वरन् उसका नाम ग्रहण भी

निषिद्ध है। कितने ही महानुभाव यह भी उद्घोष करते हैं कि वर्ण व्यवस्था तो रहनी चाहिये किन्तु स्पृश्यास्पृश्य आवश्यक नहीं। शास्त्रों के एक पक्ष को तो स्वीकार करते हैं दूसरे पक्ष को अनावश्यक और अवैध बताते हैं, बलिहारी इन धर्म मर्मज्ञों की। जब शास्त्र को वे मानते ही नहीं तो फिर उसका आश्रय क्यों ? वे जो भी तर्क उपस्थित करते हैं वह उनका तर्क निर्मूल असंगत और अप्रमाणिक है। उनका मन्तव्य है कथन है कि हिन्दू समाज का संघटन तभी सम्भव है जब यह स्पृश्यास्पृश्य का विचार सर्वथा विलीन हो जाय। परम विस्मय है वे तनिक धैर्य्य और स्थिर चित्त से जरा विचार करें तो बड़ा ही सुन्दर हो। जो हिन्दू हरिजन या अस्पृश्य वर्ग है, जिनकी स्थिति अत्यन्त दीन गरीब अवस्था में है, जो अर्थहीन, वस्त्रहीन, गृहहीन, भूमि हीन हैं वे जिन अभावों के कारण और विधर्मियों द्वारा दिये गये विविध रूप से पर्याप्त प्रलोभन से धर्मान्तरित हो जाते हैं, विदेशों से इसी निमित्त अरबों की सम्पत्ति विनियोग की जाती है जिसका परिणाम प्रत्यक्ष है। अतः इन विविध विषम अवस्थाओं को ध्यान में रखना नितान्त अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त स्वस्थचित्त से विचार करें--, सहोदर भाई एक थाली में भोजन करने वाले परस्पर में कलह कर भाई-भाई की हत्या तक कर डालते हैं। तनिक अनुभव करें मुसलमान, ईसाई आदिक जो स्पृश्यास्पृश्य को जानते तक नहीं आपस में भीषण संघर्ष कर एक दूसरे के प्राणों के घातक बने हुए हैं। इनमें भी कितना विघटन है कितना कलह है जिसका भलि प्रकार अध्ययन मनन करें। यवन शासनकाल में सहस्रों ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि

उच्चवर्ण के लोग धर्मान्तरित हुए क्या उसमें स्पृश्यास्पृश्य ही हेतु था? अतः हिताहित का कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय शास्त्र से जाना जा सकता है। इसका निर्णय केवल मानव की बुद्धि से नहीं किया जा सकता। हमारे भारत की दिव्य संस्कृति तो सारे विश्व को आलोकित करती हुई यह दिव्य सन्देश दे रही है--

एतद्ददेशप्रशूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

इस उपदेश को विस्मृत करना समुचित नहीं, अतः पुनः अपने उस अतीत का चिन्तन करें जिसकी आज के आलोचक आलोचना करने से सुधारवादी बनने का डिण्डिमघोष करते हैं। अपने उस पवित्र अतीत को आचरण में लावें और सही पक्ष को धैर्य्य से, दृढता से ग्रहण कर जीवन को, समाज को, राष्ट्र को ससुन्नत बनावें। वर्ण व्यवस्था, जाति, स्पृश्यास्पृश्य विचार आदि ये सभी अतुलित ज्ञान-विज्ञान से ओत-प्रोत हैं, इनमें सन्देह करना स्वयं को ही हानि नहीं अपितु सभी की हानि है, अतः सावधान मनस्कता से अपनी स्थूलदर्शिता को त्याग दूरदर्शिता समदर्शिता का अवलम्ब लेना हितावह है। जिन अस्पृश्यों के सम्बन्ध में केवल वाह्याडम्बर रूपेण उनकी सहानुभुति का रूपक दरशाया जाता है वहाँ तनिक अतीत का स्मरण करना समुचित होगा। कन्द, मूल, फल अथवा शीलोञ्छवृति के आश्रित रहकर अध्यात्म-चिन्तनपरायण रहते हुये तीव्र तपस्या तत्पर, आप्तकाम, पूर्णकाम, निष्काम उन ऋषि-मुनिजनों, वेदाध्ययन निरत वरिष्ठविद्वान् विप्रों को जिस परम तप का सत्फल मिलता है, वही सत्फल एक सरल

हृदय सेवा परायण भक्तिभाव निष्ठ अस्पृश्य को केवल मन्दिर शिखर या मन्दिरध्वज के दर्शन मात्र से ही मिल जाता है। शास्त्रों ने उनके प्रति कितनी सहानुभूति की है। क्या आज का सुधारवादी अपने स्वार्थ में पड़ा इस विचार को अपने मानस में प्रतिष्ठित कर पायेगा? एतावान्मात्र ही नहीं हमारे उत्तमश्लोक उन महापुरुषों ने यहाँ तक बताया भक्താग्रगण्य भक्तप्रवर श्रीप्रह्लाद कहते हैं--

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ।।

(श्रीमद्भा० स्क० ७ अ० ९ श्लोक १०)

द्वादश गुणोपेत विप्र भी यदि श्रीभगवद्विमुख हो तो उससे वह श्वपच (चाण्डाल) श्रेष्ठ है जो मनसा, वाचा, कर्मणा अपने सर्वस्व प्राणों को श्रीप्रभु के पादपद्मों में अर्पित कर देता है, वह भक्त अपने कुल को भी पवित्र कर देता है किन्तु अपने श्रेष्ठत्व का अहं रखने वाला वह विप्र स्वयं को भी पवित्र नहीं कर सकता।

इस परम महत्वपूर्ण वचन से ही सम्यक् परिलक्षित होता है कि हमारे पूर्वजों ने कभी किसी से घृणा नहीं की परञ्च प्राणिमात्र के प्रति सर्वरीत्या सहज स्नेह रक्खा है, सबको आत्मीय माना है। यह सब कुछ होते हुए शास्त्रविधि का भी परित्याग नहीं। शास्त्रों में ही 'अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः' यह श्रीभगवद् वचन हैं, इस महान् आदर्श को भुला देना अविवेकता है। अतः शास्त्रनिष्ठा शास्त्रानुकूल आचार-व्यवहार करने में ही सार्वकालिक

सुख है। दीनों के असहायों के दुःखियों के कष्टों को देखें उनकी तन, मन, धनादि से सर्वविध सहायता करें। उन पर आई हुई विपत्ति से उनकी सर्वात्मना सुरक्षा करें। इसके अतिरिक्त जो धर्मान्तरित हो गये हैं, उन्हें पुनः अपने हिन्दू धर्म में शास्त्रविधि से प्रविष्ट कराके उनके प्रति पूर्ण सौजन्य भाव रखा जाय। श्रुति-स्मृति-पुराणादि शास्त्र मर्यादा का ध्यान रखते हुए कार्य सम्पादित हो। स्वयमेव श्रीसर्वेश्वर सबका मङ्गल करेंगे। इस विषयक मनुस्मृति के ये वचन भी मननीय है--

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।।

वेद तथा स्मृति शास्त्र में कथित धर्म का परिपालन करने वाला मानव इस जगत् में यश की प्राप्ति करता है और मृत्यु उपरान्त वह परम सुख से लाभान्वित होता है।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो ह निर्बभौ ।।

वेद को श्रुति रूप में एवं धर्मशास्त्र को स्मृति रूप में समझना चाहिये। यथार्थ में वेद किंवा श्रुतियों से धर्मशास्त्र किंवा स्मृतियों का ही धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रकट हुआ है।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ।।

अधर्मपरायण पापात्मा पुरुषों की शीघ्र ही दुर्गति होती है इस विवेक को ध्यान में रखते हुए मानव को चाहिये कि वह धर्म

से क्लेश पाता हुआ भी अधर्म में अपने मन को नहीं लगावे।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत् ।।

अनाचरित धर्म ही नष्ट करता है रक्षित अर्थात् आचरित धर्म ही रक्षा करता है। अतः अनाचरित धर्म हमको विनष्ट न करदे। इस बुद्धि से धर्म की हानि नहीं करनी चाहिये। अतः इससे स्पष्ट ही है कि शास्त्र प्रतिपादित धर्म का अनुसेवन ही धर्म-निष्ठ जनों का परम कर्तव्य है । और इसी में सबका सार्वकालिक हित सन्निहित है।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञाति र्धर्मस्तिष्ठति केवलः ।।

परलोक में माता-पिता भी सहायक नहीं होते तथा स्त्री-पुत्रादिक एवं स्वजाति-बन्धुजन भी वहाँ पहुँचने में समर्थ नहीं। वहाँ तो केवल एक मात्र धर्म ही परम सहायक रूप में सर्वदा विद्यमान रहता है।

'धर्मानुगो गच्छति जीव एकः' यह शास्त्रीय वचन लोक प्रसिद्ध है। वस्तुतः धर्म का अनुसेवन करने वाला उत्तम पुरुष ही उत्तम फल उत्तम पुण्यलोकों की उपलब्धि करता है। इसलिये जो भी कार्य हो वह वेदादि-प्रतिपादित धर्मानुकूल ही हो। मनचाही करने वाले पुरुष कभी भी श्रेष्ठ फल को उपलब्ध नहीं कर सकते। एतावता धर्म-संवलित पावन जीवन ही सर्वाग्रगण्य एवं सत्फल प्रदाता है।

अतः वेद स्मृति-पुराणादि शास्त्र सरणि ही हमारे जीवन

का परम लक्ष्य होना नितान्त अभीष्ट है।

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज ने अपने विशालतम 'श्रीपरशु-रामसागर' ग्रन्थ में धर्म का स्वरूप कितना सुन्दर अभिव्यक्त किया है--

धर्म रह्याँ तो सब रह्यो, धर्म गयाँ सब जाय।
धर्म हीण नर 'परशुराँ' अन्त मरे पछताय।।



अनादिवैदिक सनातनधर्म-महत्व

अनादिवैदिक-धर्म का, अनुसेवन अनुकूल ।
'शरण' सनातन धर्म ही, धर्म बिना प्रतिकूल ।।१ ।।
स्पृश्यास्पृश्य-विचार में, अनन्त ज्ञान-विज्ञान ।
'शरण' विलोकत आप्त-वच, वेद-पुरान प्रमान ।।२ ।।
सदा-सर्वदा धर्म में, निष्ठापूर्वक भाव ।
'शरण' विमलता चित्त की, तब हरि-कृपा प्रभाव ।।३ ।।
सकल शास्त्र का सार है, श्रौत सनातन धर्म ।
'शरण' गहो निज चित्त में, आप्त-कथित यह मर्म ।।४ ।।
दुराग्रह करना व्यर्थ है, शास्त्र-वचन अवधार ।
'शरण' सनातन धर्म के, रहो मिलै सुख-सार ।।५ ।।
अन्तर-कल्मष छोड़ कर, वेद-शास्त्र उपदेश ।
'शरण' निरन्तर धार कर, विचरो अवनि प्रदेश ।।६ ।।
निगमागम अनुकूल चल, धर्म-सुधा कर पान ।
'शरण' तभी सुख-शान्ति है, अविरल अन्तर्ज्ञान ।।७ ।।
धर्मपरायण हो सदा, कर सर्वेश्वर ध्यान ।
'शरण' वही जीवन सफल, निश्चय दृढ अनुमान ।।८ ।।
कुटिल-काल मंडरात है, कब करले झट ग्रास ।
'शरण' प्रभू का ध्यान कर, चल गुरु-युग-पद पास ।।९ ।।
प्रतिपल राधाकृष्ण का, चिन्तन कर अविराम ।
'शरण' जनों पर युगल प्रभु, कृपा करैं रसधाम ।।१० ।।



अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री ''श्रीजी'' महाराज

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधा–सर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज का जन्म विक्रम संवत 1986 वैशाख शुक्ल 1 शुक्रवार तदनुसार दिनांक 10 मई, 1929 को निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में हुआ। अपकी माताश्री का नाम स्वर्णलता (सोनीबाई) एवं पिताश्री का नाम श्रीरामनाथजी शर्मा गौड़ इन्दोरिया था। आप जैसे नक्षत्रधारी महापुरुष के जन्म से यह विप्र वश धन्य हुआ है। आपश्री 11 वर्ष की अल्पावस्था में वि.सं. 1997 आषाढ़ शुक्ल 2 रविवार (रथयात्रा) के शुभावसर पर अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज से वैष्णवी दीक्षा से दीक्षित होकर पीठ के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए। वि.सं. 2000 में पूज्य गुरुदेव के गोलोकवास होने पर 14 वर्ष की अवस्था में ज्येष्ठ शुक्ल 2 शनिवार दिनाक 5 जून 1943 को आचार्यपीठ पर आसीन हुए। तदनन्तर 4 वर्ष तक श्रीधाम वृन्दावन में न्याय–व्याकरण–वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। वज्रविदेही चतु:सम्प्रदाय श्रीमहन्त श्री धनञ्जयदासजी काठिया बाबा महाराज तर्क–तर्कतीर्थ जैसे महानुभावों का आपको संरक्षण प्राप्त हुआ। आपश्री के आचार्यत्वकाल में वैष्णव चतु:सम्प्रदायों के आचार्यों, श्रीमहन्तों, सन्त महात्माओं, समस्त शंकराचार्यों श्रीकरपात्रीजी महाराज, महामण्डलेश्वरों, देश के मूर्धन्य मनीषियों, राजा–महाराजाओं, राजनेताओं के साथ निकटतम घनिष्ठ सम्पर्क बढ़ा। श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का चतुर्दिक् विस्तार हुआ। वि.सं. 2001 में आपश्री ने 15 वर्ष की अवस्था में कुरुक्षेत्र के विराट् साधु सम्मेलन में जगद्गुरु पुरीपीठाधीश्वर श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज के तत्त्वावधान में अध्यक्ष पद को अलंकृत किया।

आपश्री के कार्यकाल में तीनधाम सप्तपुरी की यात्रा सम्पन्न हुई। प्रयाग, हरिद्वार (वृन्दावन), उज्जैन, नासिक इन चारों स्थानों के कुम्भ पर्वों पर अनेकश: श्रीनिम्बार्कनगर में समायोजित धार्मिक अनुष्ठानों, धर्माचार्यों के सदुपदेशों, विविध सम्मेलनों द्वारा समग्र जन समुदाया को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया जाता है। इसी प्रकार स. 2026 में वजयात्रा, 2031 में विराट् सनातन धर्म सम्मेलन, 2047 में श्रीमुरारी बापू की रामकथा, 2050 में स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर अ.भा. विराट् सनातन धर्म सम्मेलन, 2061 में श्री भगवन्निम्बार्काचार्य 5100वां जयन्ती महोत्सव पर विराट् सनातनधर्म सम्मेलन, 2062 में युगसन्त श्रीमुरारीबापू द्वारा श्रीरामकथा, 2063 में श्रीरमेश भाई ओझा द्वारा श्रीमद्भागवत कथा आदि आयोजनों द्वारा जो धार्मिक चेतना जन–जन में स्फुरित करायी गयी वह सदा स्मरणीय है। प्रत्येक अधिकमास में आचार्यपीठ पर आयोजित होने वाले अष्टोत्तरशतभागवत, यज्ञानुष्ठान, प्रवचन श्रीरासलीलानुकरण आदि कार्यक्रम भी सदा प्रेरणाप्रद रहते हैं। आप द्वारा प्रतिदिन किया जाने वाला श्रीयुगलनाम–सकीर्तन भी श्रवणीय होता है। सन् 1966 में दिल्ली के विराट् गो–रक्षा सम्मेलन में आपश्री का सपरिकर पादार्पण हुआ था। इस अवसर पर स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज एवं अन्य धर्माचार्यों से जो महनीय विचार विमर्श हुआ वह परम ऐतिहासिक है।

आपश्री ने अपने आचार्यत्व काल में जितना देश–देशान्तरों में सम्प्रदाय का वर्चस्व बढ़ाया है उतना ही देवालयों के निर्माण, जीर्णोद्धार, शैक्षणिक संस्थाओं का निर्माण–सचालन, साहित्य प्रकाशन, नूतन ग्रन्थ रचना, गोशाला, मुद्रणालय आदि संस्थाओं द्वारा आचार्यपीठ का सर्वतोभावेन विकास किया है। आपश्री द्वारा रचित 37 ग्रन्थों में से भारत–कल्पतरु ग्रन्थ का विमोचन भारत के उपराष्ट्रपति श्रीशकरदयालजी शर्मा ने दिल्ली में किया। इसी प्रकार आपके अन्य ग्रन्थों का मूर्द्धन्य राजनेताओं, शीर्षस्थ महापुरुषों, जगद्गुरुओं द्वारा विमोचन समारोह सम्पन्न हुये हैं। एव आप द्वारा प्रणीत रचनाओं पर तीन–चार शोधप्रबन्ध भी प्रस्तुत हुए हैं जो मननीय हैं। अस्वस्थ अवस्था में भी आप निरन्तर क्रियाशील रहते है। आपश्री का संरक्षण पाकर और आपश्री के महान् व्यक्तित्व व कृतित्व से श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय किंवा सनातन धर्म जगत् विशेषत: उपकृत हुआ है। आपके मधुर दर्शन की एक झलक पाने और आपश्री के वचनामृत सुनने के लिए धार्मिक जन सदा समुत्सुक रहते हैं।

